पगला गई है भागो!

मैत्रेयी पुष्पा

काम से उचटकर भागो की निगाह हथेली पर पड़ती है तो अपनी ही गली अनपहचान-सी मालूम होती है। रेत-भरी डगर पर दूधिया रोशनी की नदी बह निकली हो जैसे। कौन कहेगा कि यह हवेली जर्जर होकर चरमरा रही है, या ढुरऊ बखरी फूट जाने के कारण इसकी पौर में भैंस बंधने लगी है! आज की तो रंगत ही अलग है, जिज्जी के घर की।

जिज्जी भाई-बहनों में सबसे बड़ी सन्तान थीं और भागो सबसे छोटी। जिज्जी का ब्याह यहां महुआपुर में हुआ होगा माधोसिंह के साथ, पर भागो को अपने ब्याह की तो याद ही नहीं।

अपने गांव की कोई झांई-परछाईं भी मन में नहीं उतरती। एक दिन जिज्जी ज़ोर से रो उठी तो वह गिट्टे खेलते-से भागी थी। जड़ मूरख-सी निरखती रही बहन को। पड़ोस की औरतें जिज्जी को चुपाने में लगीं थीं, "काहे को रोऊती ठकुराइन? करम की हेटी हती अभागिन, सो कछु देखवो नहीं बदौ हतौ। इतेक लम्बी जिन्दगी फिर अपनी जात बिरादरी में दूसरे ब्याह की रसम-रीत...?"

"आंसू काढ़ जनमजली। आदमी नहीं रहौ और तें उजबक-सी हेर रही!" किसी जनाने हाथ ने उसके सिर पर थप्पड़ दे मारा।

वह सारे दिन कोठे में छिपी बैठी रही। फिर समय के अन्तराल ने बता दिया कि वह विधवा हो गयी। तब से आज तक उसका तन, उसका मन, सम्पूर्ण अस्तित्व विधवा है। हौंस-उमंग, पहनना-ओढ़ना, सजना-संवरना उसके लिए वर्जित है। औरतें उसे सगुन-सात-मंगल कार्यों से बचाती हैं वह स्वयं भी देख-बचकर निकलती है। 'अठैन' कर देने से सामने वाले के साथ उसका अपना मन भी दुखी हो जाता है।

सदैव जी-जान लगाकर जिज्जी के काम करती रही। जीजा के हुकुम पर दौड़ती रही। आम-जामुन तोड़ते, बहनोतों को गोद खिलाते उमर उतरने को हो आयी है अब तो।

आज शोभा देखने लायक है। लोग क्या जानते नहीं कि माधोसिंह की हवेली भले ही मिट्टी और ककरिया ईंटों की बनी हो, मगर पुरानी चाल की राजसी गरिमा से खड़ी है। इन दिनों तो रंग-रोगन पुतवा दिया है, सो नई लकदक से जगर-मगर है।

जब से गांव में बिजली आई है, शादी-ब्याहों की रंगत ही बदल गयी है। पहले की तरह नहीं हंडा 'मूड़' पै धर के चलो तो कहीं बीच रास्ते में ही गुप-गुप करके बुझ जाय। दिखइया, सुनइया, दूल्हा, पालकी सब वहीं-के-वहीं थिर।

भले ही 'करंट' सिंचाई के लिए न मिले, देर-सबेर मिले, पर ब्याह के समय तो कहकर रखना पड़ता है। किसी प्रकार 'औसर' की शोभा बनी रहे। ब्याह के खर्च में से ही सौ-पचास काढ़कर ऑपरेटर के हाथ पै धर दो, पंगत जिंवा दो बस्स!

सजावट भी कम नहीं करवायी जीजा ने! आतिशबाजी चले न चले, यह रंग-बिरंगे लट्टुओं पर थिरकती चमकनी-फुरहरी किसी आतिशबाजी से कम है क्या? चारों ओर अनार-से छूट रहे हैं-आंखों के सम्मुख बिखरते हुए चमकीले छींटे।

भागो की आंखें जगमगाने लगीं।

आज अनुसुइया होती तो देखती कि भाई के ब्याह पर उसका घर-द्वार कैसा!

अनुसुइया का ध्यान आते ही भागो का मन बुझने लगा। कलेजे में हूक उमड़ आयी। हाथ में पकड़ा हल्दी का बेला गिरने-गिरने को हो आया।

इतने में जिज्जी आ गयीं, “भागो, तुम्हें दस जांगा देखि आये रुआंसौ मो बनायें काहे बैठीं इते? कपड़ा-उन्ना बदल डारौ। ऐसी ही गत बनाये रहैगी पई-पाहुनों के आगे, सिर्रिन।”

“जिज्जी को याद नहीं आ रही अनुसुइया?”

अब जिज्जी से क्या कहे कि उन्ना-कपड़ा देखें या कुटान-पिसान करवायें? तुमने तो कई दई कि मठोले की जनीं को टेर कैं करा लो काम! पर वो आबै तब न!

अब पहले की-सी बात रही है कहीं? वह चमरौटा के गिनकर दस चक्कर लगा आयी है तब कहीं जाकर आईं। इतने में वह खुद ही फटक डालती गेहूं। और आ गयी यही क्या कम है। जिज्जी को सन्तोष हो गया।

अजब बहस बांध रखी है-इन्हें बुलाने की ज़िद है और उन्हें पैज पड़ गयी है न आने की। आपसी अहं की बात ही कहो। प्यार-प्रीत का बुलाना-चलाना हो तो आदमी सिर के बल चला आये। अब जीजा तौ अपनी ठकुराइस गांठे फिरते हैं।

मठोले की जनी बुरी थोड़े ही है, बात करो तो रस-भरी गगरी-सी छलकती है, सौ-सौ बेर पांव पड़ती है। दुःख तकलीफ में जान-प्रान से हाजिर। जो कुत्ता-कूकरा की तरह दुत्कारोगे तो फिर अपनी इज्जत-आबरू तो ‘सबै’ प्यारी है।

जिज्जी की बात पर वह खड़ी हो गयी। अपनी हल्दी-मसाले लगी धोती को झाड़ा और ठीक से पटली बिठाने लगी।

कपड़े बदलने का मन था ही नहीं, फिर भी ट्रंक खोला। धोतियां उलटती-पुलटती रही, “जे तो अनुसुइया ने पहरी थी केशकली की बरात के दिन। नई की नई धरी है। बस एक बार ही पहरी। और जे! जे स्यौरा-पहाड़ के मेला में पहर गयी थी। जाने की नजर लगी कि मोंड़ी भट्टिन बुखार में तपत आयी। जा सुपेद धुतिया कैसे लगत हती पहर कें मीरा बाई! जोगिन! बस तनपुरिया हाथ में लेवे की देर हती।”

उसने ट्रंक बन्द कर दिया, देर तक वहीं धरती खरोंचती रही। क्या करे मनिख! मन कुन्द हो तो पहनना, ओढ़ना रुचता है भला? होंस-हुलस, सोंख-मौज सब मन के खेल ठहरे। उमंग-उछाह, सुख-दुःख, जवानी-बुढ़ापा मन के भीतर उठती सोच की लकीरें ही तो हैं। अनुकूल पड़े तो बढ़े शरीर में भी पंख लगा दें और विपरीत पड़ें तो गद्दर जवानी भी रोगिनी-सी घिसटे।

आज के दिन होती न अनुसुइया, तो उर्र-फुर्र उड़ी फिरती। अब तक तो गांव के दस चक्कर मार आती। मठोले की जनी तो क्या पूरे चमरौटा और कछियाने को बुला लाती। अपने नरेश भइया के ब्याह की होंस में ‘बिला-पपरिया’ बांट आती। भाभी के रूप-सरूप की गाथा कहती डोलती।

कितनी बार तो उसी से झगड़ लेती कि अम्मा नाइन बुलाओ उबटन लगवाकर नहाना है। मेंहदी-बिन्दी का सवाल अलग। फिर चुरेलिन बुलाओ, चूड़ियां पहननी है। दर्जी काका की देहरी खूंद आती दसियों बार। चोली-घाघरे में बीसियों खोट निकालकर रख देती-यहां से ऊंचा, वहां से छोटा! कद की लम्बी थी सो चार की जगह पांच गज कपड़ा लगता था घाघरे में।

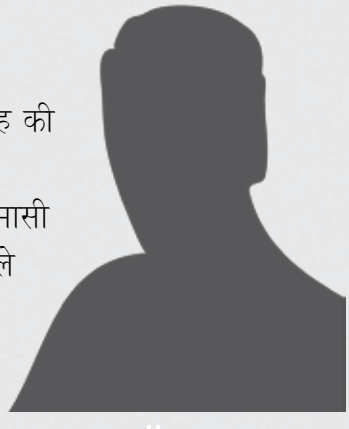

जब तक ठीक न होता बड़बड़ाती रहती, “फिटन ठीक नहीं है अम्मा!”

भागो के समक्ष इस बेवक्त अनचाहे चित्र क्यों उभरने लगे! ये यादें क्या इस विवाह की बेला में उमड़ने को थीं?

अनुसुइया पैदा हुई थी जिज्जी की पांचवीं सन्तान। पहले चार लड़के थे। वह सतमासी जन्म पड़ी, रोयी न कुलबुलायी। महतरानी ने बड़ी निश्चिन्तता से एक कोने में तसले समेत धर दीं, “मोड़ी जनमी है, मरी भई। द्वारे खबर कर दो।”

“चल अच्छी...” न जाने किसका जनाना स्वर था।

भागो तसले के पास जा बैठी। नवजात शिशु पर निगाहें अटकाये देर तक देखती रही। लगा कि सांस चल रही है। चिड़िया के हाल भये बच्चे की-सी कमज़ोर नन्हीं गरदन के ठीक पास आंखे गड़ा दीं। लगा कि अंडी-भर जगह में हरकत हो रही है-ऊपर-नीचे गिरती-धुक्, धुक्।

भागो उछल पड़ी। दौड़कर जिज्जी की खटिया के पास आ गयी, "जिज्जी, ओ जिज्जी! मरी नहीं है बिटिया, तेरौ कौल, जिन्दी है! फिंकवा न दिओ।"

जननी ने बहन की आवाज़ पर आंखें खोलीं और उदास हो गयी, मानो बेटी खत्म हो जाने से मिली विश्रान्ति में किसी ने खलल डाला हो।

"अब भागो, ते ही पाल लै, जा मोड़ी को।" दाई ने कठोरता से कहकर बित्तेभर की कमज़ोर काया को उसकी गोद में डाल दिया।

भागो क्या जाने, उसे तो बिटिया सपने में सोचा हुआ वरदान लगी। बांहों में सहेज ली। रुई के फाहे को गुड़ के घोल में डुबो-डुबोकर बच्ची को चटाती रही। उसके बाद बकरी का दूध, गाय का दूध...मां की रिक्तता पाटने का सामर्थ्य भर उपक्रम करती रही। बच्ची जब कभी गाय-बकरी के दूध से बीमार होने लगती तो भागो जिज्जी से विनती करती, "जिज्जी पिवा दो दूध! हां-हां जिज्जी। बिटिया भूख से तलफ रही। पिवा दो तनक।"

भागो को गीता के मंत्रों का ज्ञान भले न हो, साधना-उपासना का मरम उसकी भेदस-बुद्धि से बाहर की चीज है, और न उसे रामायण की चौपाइयां ही याद हैं, लेकिन उसने सती-अनुसुइया, सावित्री, नल-दमयन्ती और मदालसा की कथायें सुनी हैं। आख्यानों में अटूट श्रद्धा है, इसी कारण वह बिना नागा मंदिर जाती है।

'अनुसुइया' नाम उसे बहुत भाया। बिटिया का नाम अनुसुइया रख दिया।

अप्रसूता-कोख में ममता का अथाह सागर लहराने लगा। जीवन की एकांगी छाया में वह अनुसुइया को समेटकर कुनबा-कुटुम्ब वाली हो गयी। एक जीव से सारा संसार ऐसा भरा-पूरा! भागो को लगता कि उंगली पकड़कर बिटिया उसे अलौकिक ब्रह्मांड में उतार लायी है।

और दिन, महीने, साल सरकते-सरकते अनुसुइया नाजुक बेल-सी बढ़ने लगी। वह सराबोर हुई बेटी पर निछावर हुई जाती। वही क्या, पूरा मोहल्ला, गांव गमकता, जैसे कच्चे-आम फलने की ऋतु आ गयी हो। गोरी कचनार-सी बेटी के लम्बे बाल देखकर ठकुराइन सिहा उठती।

"भागो तें जानत हती कै ऐसी सुगढ़ निकरहैं मोंड़ी।"

"नज़र न लगइओ जिज्जी! तुम्हारी आंखन में नौन-राई!"

घर में भागो के वैधव्य की चर्चा होती, अनुसुइया की जन्म-कथा कही जाती, मगर अनुसुइया सबसे निष्प्रभाव हुई बेटी बनकर उसी की गोद में पड़ी रही।

"मौसी, ओ मौसी! बेसन-मसालों में ही लिपटी बैठी रहोगी या...। क्यों पागल हुई इन सबमें, समय नष्ट कर रही हो।" नरेश हंसता है।

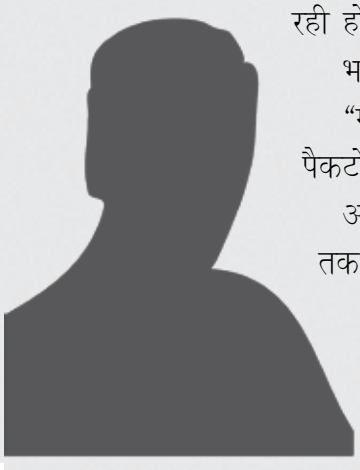

भागो की तन्द्रा टूटी। अरे वह तो यहीं बैठी रह गयी।

"मौसी पहले कहतीं तो तुम्हें इतना काम न करना पड़ता। शहर से थैलियों में बन्द आटा, पैकटों में बन्द मसाले-बेसन, सब आ जाता। तुम्हारे सारे झंझट खत्म।"

अब नरेश को कौन समझाये, कि भइया पांच-गांच का न्यौता है। दोपहर से आधी रात तक बीसियों पंगत बिठानी पड़ेगी। तुम्हारे थैली-पैकेट कितनी देर चलेंगे यहां?

ब्याह-कारज ही द्वारे पर लोग मुंह जुठारते हैं। वैसे कौन आता है किसी के घर खाने के लिए। सब अपनी नौन-रोटी पर हिम्मत रखते हैं।

"नरेश, तुम्हारी दुल्हन आबै तो खरीदबा दिओ जे अटांक-छटांक भरे मसाले के

पैकट और सेर-आध सेर की थैली चून की। भइया भागो की जिन्दगानी तौ जई काम के सहारे गुजरी है।"

नरेश का ब्याह क्या, बस दावत समझो। ब्याह तो कहता है कि 'कोरट-कचैरी' में हो गया। वह तो बड़े असमंजस में पड़ी है कि यह लड़का बरात लेकर किसके दरवाजे गया होगा? टीका किसने किया होगा? पांव-खराई कैसे हुई होगी और कलेऊ में नेग के लिए किससे झगड़ा होगा-जजों से?

पर जीजा कहते हैं कि नरेश का ब्याह हो गया। शहर के ब्याह ऐसे ही होते हैं-कागज पर दस्खत करके। जिज्जी भी कैसी हैं जो अन्धी की तरह जीजा की बात मान गयीं।

तिरवेनियां तो ऐन जिज्जी के सामने बता रही थी कि वह अपने डॉक्टर देवर के यहां ब्याह में शहर गयी थी। कहती थी कि ऐसा रौनकदार ब्याह तो उसने अपनी ज़िन्दगी में नहीं देखा, बैंड वाले खुद ऐसे सजे कि उनके सामने दूल्हा फीका लगने लगा।

उसने तो ऐसा खाना कभी नहीं खाया। गिनने पर आयी तो गिनती नहीं कर सकी-छप्पन भोगों से भी ज़्यादा रही होंगी खाने की चीज़ें। फिर जितनी मरज़ी हो उतनी लो। यहां की तरह नहीं कि लड्डू वाला एक बार पंगत के सामने फिर गया सो फिर गया। फिर बीस टेर मारते रहो, मजाल है कि दरसन दे जाये। पर शहर के लोग खाते ही कितना हैं? बस चिरइया की तरह एक-दो चोंच।

फिर जीजा और नरेश कहते हैं कि शहर के ब्याह कोरट में...

खैर, अब ब्याह वहां हुआ है, तो हुआ। कौन जिरह करे! पर जीजा ने तो पंडित के सामने, अगिनि के समक्ष उसके फेरे डालने की जरूरत ही नहीं समझी। जिज्जी इस बात पर खूब झगड़ी थी कि अब गांव में वे क्या मुंह दिखायेंगी? कुनबा-खानदान, पुरा-पड़ोस के बुलउआ-चलउआ तो उन्हें ही निभाने पड़ते हैं, सभी के उत्तर उन्हें ही दैने पड़ेंगे। अब माधोसिंह की मूंछ पकड़कर तो कोई पूछेगा नहीं।

जिज्जी ने बहुत रार मचायी तो जीजा ने फटकार डाली, "मूरख हो तुम! बखत के संग बदलबौ सीखो। नहीं तो कल्ल के दिना लड़का बुढ़ापै पै ठोकर मार जैहै। अकेली बैठी बिसूरत रहियो।"

"हओ, अब तुम्हें जरूल बंहगी में बैठार कें तीरथ करा ले आहै।"

"न करायै तीरथ, न बैठारै बंहगी। इज्जत-आबरू तौ रखि है! माधोसिंह के खानदान की सान-सौकत और बंस-बेल तो जई से रैहै। अपनी हठ पकरे रहें, दुसमनाई बांध लें! जा कहां की अकलमंदी भई।"

भागो ने सब सुना। बड़ी अकल है जीजा में!

"भागो, ओ भागो! अरी बाहर सिरकारी अहलकार आ गये, नाते-रिश्तेदार जुर गये, और तें इतै कोठा में जा बैठी। का कर रई इतै? सरबत पहुंचवा दो बाहर।"

जिज्जी की आवाज़ पर जैसे वह सोते से जागी हो। बालटी और स्टील का जग उठा लायी। यन्त्रवत् शरबत घोलने लगी।

भागो ने उझककर देखा-बाहर की बैठक में बहू सज रही है। जीजा ने खास प्रबंध किया है। कह रहे थे कि शहर की बेटी है, कुछ दुःख-तकलीफ़ न हो।

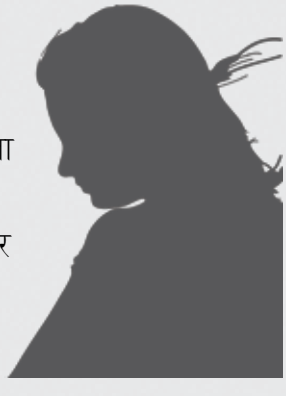

सजाने वाली भी बहू के संग शहर से आयी है। बहू साड़ी-कपड़ा, सिंगार-पटार अपने संग लायी है। गहने जिज्जी ने दिये हैं। जिज्जी खड़ी-खड़ी बता तो रही हैं कि दस्ताने का पेंच कैसे लगेगा, बेल-चूड़ी कैसे पहनी जायेंगी और तिदाना गले से चिपकाकर पहना जाता है। कर्धनी की कील आधे ठप्पे से जुड़ेगी।

बहू उत्फुल्ल है। वह गांव के गहनों को कैसे निरख रही है-हाथ में उछाल-उछालकर तोल रही है, "ओ गॉड, सो हैवी! ऐसे भारी! मेरी तो कलाई ही मुड़ जायेगी। पांव छिल जायेंगे।"

माधो जीजा सुनहरी अचकन और चूड़ीदार पाजामा पहने भीतर आये। कनखी से बहू के कमरे की ओर झांक गये। निछावर हुए जाते हैं। होंठों में असीसें भरी हैं। कितने खुश हैं जीजा।

जिज्जी को कहते हुए निकल गये हैं, "देख लो, अब कोई जा नहीं कह सकता कि माधोसिंह के बेटे ने ब्याह की बावत बाप से विरोध काहे करौ। सब के मौं बन्द हो जैहें। चन्दा की उजियारी लैकें आऔ है नरेश। पूरनमासी के चन्दरमा-सी खूबसूरत। गांव भर में है कनेऊ बहू ऐसी? अरे अब का बच्चा थोड़े ही है, बड़ौ है, समझदार। बई की हां में हां मिलावे में भलाई है। असहमति जता कें का कर लेते? वा की बला से! बैठे रहते अपने घर।"

पर आज भागो को क्या हुआ? ऐसी असमय, अनुसुइया की सुधियों से कलेजा भर आया! दइया, कोई कटार-सी चलती है आतमा में। जिज्जी भी क्या कहेंगी जलमजली सगुन-सात बेटे-बहू को देखकर सिहा नहीं रही। मनहूस सूरत बनाये डोल रही है।

उसने धोती के छोर से आंखें पोंछ डालीं। जिज्जी भूल गयीं अनुसुइया को? कुछ भी सही, कोख से जनी तो उन्होंने ही थी! पली तो उनके ही आंगन में...। शायद पति के डर से मुख भींचे हों। जीजा के सामने कौन ले सकता है अनुसुइया का नाम? कच्चा चबा जायेंगे।

द्वार की धजा बदल चुकी है-शामियाने में वर-वधू के लिए दो महाराजा कुर्सियां-लाल मखमल से जड़ी हुईं, सुनहरी हत्थों वाली, सिंहासन की तरह डाल दी गयीं। सामने कतारबद्ध कुर्सियां-ही-कुर्सियां। बगल वाले शामियाने में खाने का प्रबंध होगा। डोंगा-प्लेटों का असबाब। विभिन्न मसालों की उठती महक से गांव गमक उठा।

लोग चकित थे-देखो ठाकुर का दिल। बेटे की राजी में राजी! जी खोलकर खर्च किया है। कचहरी-कोरट के ब्याह में फूटी पाई भी दहेज नहीं। अपने घर से लुटाकर ही तमाशा देख रहे हैं। माधो ठाकुर ने बाप-दादों की बात रखी है सदा। भले ही जमींदारी टूट गयी, पर मजाल है कि नाक पर मक्खी बैठने दी हो।

पंडाल भर गया। दूल्हा-दुल्हन आ बैठे। औरतों के खड़े झुंड में घूंघटों के बीच वार्तालाप चल रहा था, "सिया जू लग रही है बहू! गुलाबी घाघरा-चुनरी में दूध-सी गोरी बहू! गहने कैसे खिल रहे हैं। सच्ची, सियारामजी की जोड़ी लग रही है।"

"लरका ने खुद्द पसन्द करी।"

रिश्तेदार, सगे-सम्बन्धी ऊंची स्टेज पर चढ़कर रुपया-पैसा उपहार दे आये। अपनी-अपनी औकात के हिसाब से और वर-वधू के साथ फोटू खिंचा आये। उसी सब की विशद चर्चा में लगे थे।

अन्त में माता-पिता की बारी थी।

पंडित जी की आवाज़ गूंजी, "माधो ठाकुर साहब, आशीर्वाद दो। बुला लो जनानखाने से भी। लड़का-बहू को असीसें।"

जिज्जी को भागो का ध्यान हो आया। घूंघट की ओट से इधर-उधर निगाह दौड़ायी। ऐसे में भी न जाने कहां, काम में हिलगी होगी। संग चलती, वाके का बेटा-बहू नहीं हैं? हमारे सो वाके! और है ही कौन, बिचारी कौ।"

जिज्जी को दिखी, दूर कोने में खड़ी गम्भीर मुद्रा बनाये किसी पाहुने से बातों में उलझ रही थी।

"ओ भौजाई, भागो को भेजिए जल्दी, वे ठाड़ी।" जिज्जी कहती हुई रेशमी चादर संभालती पति के पीछे चली गयीं।

स्टेज पर पहुंचकर ठाकुर ने दोनों हाथ बेटा-बहू के शीशों पर रख दिये।

फोटोग्राफर दौड़ा, "ठाकुर साहब, ऐसे ही, ऐसे ही खड़े रहो।"

क्लिक-क्लिक कैमरा चलने लगा कि ठीक उसी समय निशाना बांधा हुआ नुकीला पत्थर, विष-बुझे बाणों की तरह नुकीले और धारदार! पत्थर ही पत्थर।

अचूक सन्धान जैसे कोई बन्दूक से गोली दाग रहा हो। नाक और चेहरे के कटावों से रक्त की तेज़ धारें छूटने लगीं। खानदानी शेरवानी रंगकर लाल हो गयी।

आसपास के लोग भी घायल हो रहे थे। भगदड़ मच गयी। कोलाहल के बीच ठाकुर अचेत होकर कबके लुढ़क चुके थे। ठकुराइन विलाप करने लगीं।

अपने को बचाते तथा प्रक्षेण की दिशा को अनुमानते हुए लोग उसी ओर दौड़ने लगे। गली-मुहल्ला, घर-बखरी सब छान लिए, कोना-कोना खोजां पर कोई नहीं।

अंत में लाला की रोड़ी-पत्थर से भरी छत से जो पकड़कर लायी गयी, उसे देखते ही जिज्जी को गश आने लगा, "भागोऽऽ!!!"

भागो चीखती चली आ रही थी, विक्षिप्तों की तरह, "ओ अधरमी! अन्यायी! ठाकुर माधो! आज बेटा-बहू के स्वागत में मरे जा रहे हो तुम? खुशी में असपेर भरकर के गांव जिंवा रहे!"

"आज आंखें मूंद लईं? बेटा की गलती दिखाई नहीं दई तुम्हें? याद करौ माधो जे ही गलती तौ मेरी अनुसुइया ने करी थी बस जे ही! राच्छस जे ही।"

"तैने जो सराबी-जुआरी ढूंढो हतो सो बा ने पसन्द नहीं करौ। मास्टर जी से प्रीत हती, हमें बतायी हमारी बिटिया ने! भगवान् के अगाई मन्दिर में ब्याह करौ हतौ और फिर गरभ..."

"मास्टर आन-बिरादरी का हतो सो का? भलै मानस हतौ। और जा बहू जा की तुम आरती उतार रहे जा कौन-सी असल ठाकुर की जाई है। जा तैं हिन्दू तक नइयां। और चार महिना गरभ...! माधो फिर, आज दै दै बेटा को जहर जैसे मेरी अनुसुइया को...!!!"

वह चीखते-चीखते धरती पर लुढ़क पड़ी। मगर खींचने वाले खिंचेड़ते रहे दूर तक।

बाकी लोग अवाक्! अवसन्न! एक-दूसरे को उलझी हुई प्रश्नवाचक निगाहों से घूरते हुए...

धीरे-धीरे फुसफुसाहटें उभरने लगीं। उन सारी आवाज़ों के ऊपर रुदन में लिपटा हुआ ठकुराइन का स्वर तैरने लगा, "भागो सिर्रिन हो गयी।"

मैत्रेयी पुष्पा

हिन्दी साहित्य जगत की मशहूर लेखिका हैं।